प्राचीन भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण और प्रकृति पूजा

प्रियंका[1] डॉ० अर्चना सिंह[2]

[1]शोध छात्रा [2]प्रोफेसर
इतिहास विभाग मेरठ कॉलेज, मेरठ

सारांश

इतिहास निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसमें वर्तमान में घटित हो रही समस्त घटनाएं भूतकाल में पहुँचते ही इतिहास की विषय–वस्तु बन जाती है। प्रकृति एवं पर्यावरण के दायरे में घट रही घटनाएं भी इतिहास बन जाती है। मनुष्य ने जब से पृथ्वी पर अपनी आँखे खोली है, उसने स्वयं को प्रकृति की गोद में पाया है। उसने प्रकृति को समझने का प्रयास किया तथा प्रकृति भी उसकी पालक बनी। वह पूर्ण रूप से प्रकृति पर ही निर्भर है। प्रकृति ने मनुष्य का हर कदम पर साथ दिया है, उसने उसको जीने के लिए वायु, जल, भोजन, तन ढकने के लिए वस्त्र तथा रहने के लिए आवास जैसी मूलभूत आवश्यक वस्तुयें प्रदान की। मनुष्य के विकास में प्रकृति का अमूल्य योगदान है। पर्यावरण व प्रकृति संरक्षण की अवधारणा भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है। भारतीय सांस्कृतिक चिंतन व दर्शन में प्रकृति को ही समस्त प्राणियों के जीवन का आधार माना गया है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को इतना महत्व दिया गया है कि मनुष्य को प्रकृति से अलग कर देने का कोई स्थान ही नहीं है, हालांकि प्राचीन भारतीय संस्कृति में वर्तमान की तरह पर्यावरण का अध्ययन नहीं किया जाता था, लेकिन प्राचीन ऋषि–मुनि प्रकृति के मौलिक सिद्धान्तों के प्रति बहुत सचेत रहते थे। वे जानते थे कि प्रकृति का विनाश अपने स्वयं के क्रमिक उन्मूलन का वापस लौट आता है। मानव सभ्यता और संस्कृति का विकास पर्यावरण के सामंजस्य व समाकूलन का परिणाम है, परन्तु वर्तमान में प्रकृति ने जो हमें मुफ्त में प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध कराये है उनका अत्यधिक दोहन के कारण पर्यावरण सामंजस्य बिगड गया है। वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व इस संकट से जूझ रहा है। आज न मनुष्य के पास सांस लेने के लिए स्वच्छ वायु है न ही पीने के लिए स्वच्छ जल और न ही स्वच्छ खाना। अपने आर्थिक विकास के क्रम में मनुष्य ने प्रकृति की हर चीज में विष भर दिया है। विश्व की समस्त संस्कृतियों व परम्पराओं के चिन्तकों, प्रबुद्धजनों एवं सरकारों का आज पर्यावरण की शुद्धता, अक्षुण्णता एवं संरक्षण पर गहराई पूर्वक विचार किया जा रहा है ताकि प्राकृतिक पर्यावरण हमारे व हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए स्वच्छ रहे। जिससे प्रकृति को भी कोई नुकसान न हो मानव व अन्य प्राणियों का जीवन भी स्वच्छ व स्वस्थ रहे।

बीज शब्द – भारतीय संस्कृति, प्रकृति, पर्यावरण आदि

प्रस्तावना

मनुष्य सदैव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रकृति से जुड़ा होता है। मनुष्य एवं प्रकृति के इस संबंध को हमारे प्राचीन ऋषि–मुनियों ने गहराई से समझा था इसलिए प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में प्रकृति के महत्ता को गहराई से समझाया गया है। पर्यावरण चिंतन की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है जितना कि मानव का आस्तित्व। प्राचीन भारतीय संस्कृति में प्रकृति को माता की संज्ञा दी गयी है। सभी प्राकृतिक उपादानों वृक्ष, नदी, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, आकाश–पाताल, भूमि, अग्नि, जल, वायु, सूर्य, चन्द्र, ग्रह इत्यादि सभी की पूजा–अर्चना एवं सम्मान भारतीय संस्कृति में मिलता है। इन्हीं प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करके मानव अपने को सुरक्षित महसूस करता है, अपना वजूद तलाशता, इसीलिए धरती, जल, वन, पशुओ इत्यादि सभी के प्रति एक संरक्षणकारी भावना हावी रहती थी। वर्तमान में भी प्राचीन भारतीय संस्कृति की अनेक परंपराएँ एवं संस्कार इसी प्राकृतिक संरक्षण पर आधारित है। भारत में प्राचीन काल से ही लोगो का झुकाव पर्यावरण तथा उसकी समस्याओं तथा उन समस्याओं के समाधान की तरफ रहा है और सदियों से ही इसे हम विरासत के रूप में अपनाते आ रहे है। मनुष्य अपने विकास की प्रगति में हमेशा प्रकृति से जुड़ा रहा है उसने प्रकृति को समझा तथा अपने विकास में प्रकृति को भागीदार बनाया। इसी क्रम में उसने प्रकृति पर कई बार विजय प्राप्त की व प्रकृति को अपना मित्र बनाया। मानव और प्रकृति के इसी अर्न्तसम्बन्ध के कारण संस्कृति और सभ्यताओं का जन्म हुआ। इसी क्रम में मनुष्य ने अग्नि की खोज की, पहिए का अविष्कार किया, पशुओं को पालतू बनाया, कृषि का विकास किया तथा बर्तन

बनाया। इसी क्रम में मनुष्य ने विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नित–नयी ऊँचाईयाँ प्राप्त की। आज मनुष्य न सिर्फ पृथ्वी के तत्वों में रूचि रखता है, बल्कि उसने अंतरिक्ष के विषय में भी रूचि दिखायी व सफलता प्राप्त की।

भारतीय संस्कृति में अनेको ऐसे उदाहरण प्राप्त होते है जो पर्यावरण संरक्षण को दर्शाते है। पृथ्वी पर जीवन, जल, कार्बन तथा उष्मा के एक खास संतुलन के कारण संभव हुआ है। इसमें कोई भी संतुलन गडबड़ाने से जीवन पर खतरा उत्पन्न हो जायेगा इसलिए हर धर्म, समुदाय, परंपरा में प्रकृति का यह साहचर्य, यह उत्पादन, उसकी यह देन मानव के लिए बराबर सुलभ रहे। लेकिन प्राचीन काल में यह कल्पना भी नही की जा सकती थी कि आने वाले समय में प्रकृति का अंधाधुध दोहन इस कदर होगा कि पृथ्वी पर जीवन ही संकट बन जायेगा। औद्योगिक मानव के उत्पन्न होने के बाद जब मानव ने प्रकृति पर नियंत्रण करना प्रारंभ किया और प्रकृति को अपना नियंता समझने के बजाय उसको अपना दास, समझने लगा तभी से पर्यावरण संकट उत्पन्न होने लगा। तब मनुष्य की जीवन शैली में हवा, पानी, मिट्टी तथा जीवन के प्रत्येक पहलू को इस तरह दूषित किया कि जीवन के विनाश का संकट उत्पन्न हो गया।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में प्रकृति एवं पर्यावरण संरक्षण

प्राचीन भारतीय ऋषि–मुनियों ने पर्यावरणीय चेतना को जन–जीवन से जोड़ दिया था। उनकी सूझ–बूझ गहन एवं व्यापक थी। प्रकृति के साहचर्य में ही हमारी संस्कृति फली–फूली। वर्तमान समय में पूरा विश्व पर्यावरण संकट से जूझ रहा है। प्राचीन समय मे ऐसी कोई समस्या ही विधमान नहीं थी। भारतीय संस्कृति में सृष्टि के प्रारम्भ से ही भारतीय मनीषी प्राणीमात्र के कल्याणर्थ सतत् जागरूक एवं चिन्तनशील रहे है, यही हमारी भारतीय संस्कृति का मूल उद्घघोष एवं आदर्शवाक्य भी है :–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्रिहुःखभाग्भवेत् दुःखभाग भवेव।।

अर्थात यहाँ सभी सुखी एवं स्वस्थ हो यहीं कामना उक्तमंत्र में की गयी है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में वायु संरक्षण

वायु सभी सजीव प्राणियों के जीवन का आधार है। पृथ्वी पर जीवन ऑक्सीजन पर आधारित है। ऑक्सीजन को प्राणवायु भी कहते है इसलिए जीवन रक्षा हेतु वायु प्रदूषण के सभी तत्वों पर नियंत्रण अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण की रक्षा हेतु वायु की शुद्धि को अथर्ववेद में **आपो वाता ओषधमः।** कहकर निर्देशित किया गया है। ऋग्वेद के एक मंत्र में निर्देशित है कि वायु में अमृत अर्थात ऑक्सीजन हैं। उसको कभी भी नष्ट न होने दे–

नू चित्रु वायोरमृतं वि दस्येत्।[1]

अर्थात ऐसा कोई कार्य न करें जिससे वायुमंडल में ऑक्सीजन की कमी हो। अथर्ववेद में वायु और सूर्य के महत्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि तुम दोनो संसार के रक्षक हो–

युंव वायो सविता च भुवनानि रक्षमः। अथर्ववेद–4.25.03[2]

यजुर्वेद में वायुतत्व की दृष्टि से ''वायुर्वो विविनन्तु'' शब्द का वर्णन मिलता है, इसका आशय है वायु तुम्हे शुद्ध करें। यही शुद्ध वायु शरीर के अन्दर निर्बाध प्रविष्ट होता है और शरीर की शुद्धि, पितशुद्धि तथा मानसिक एकाग्रता में सहायक होता है। वायु शुद्ध होगी तो हम शारीरिक एवं मानसिक रूप से मजबूत होगे। उपनिषदों में भी वायु के संरक्षण की धारणा मिलती है जैसा कि छन्दोग्योपनिषद में कहा गया है–

प्राणो ब्रह्मेति व्यजनात्। प्राणाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

प्राणेन जातानि जीवन्ति। प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। (तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/3)

अर्थात–शरीर में वायु की उपस्थिति प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान के रूप मे वायु, उपस्य, पाणि आदि अंगो में होती है। ये समस्त वायु शारीरिक क्रियाओं के संचालन के निमिन्त है। संजीवनी शक्ति के कारण प्राण ब्रहत संज्ञा के उपास्य माना गया है।

यज्ञो के द्वारा भी वायु शुद्ध होती है। यज्ञो का पर्यावरण (पारिस्थितिकी) दृष्टि से अत्यंत महत्व है। भारतीय संस्कृति में यज्ञो को सर्वाधिक महत्व दिया गया है कोई भी नित्य नैमिस्तिक क्रिया ऐसी नहीं है जिसका संपादन यज्ञ के बिना किया जाता हो, इसी वजह से प्राचीन भारतीय संस्कृति में यज्ञों से प्रेरणा ली गई है। यहाँ तक कि साधक यह प्रार्थना करता है कि मेरा प्राण, अपान, व्यान, मेरा मन, मेरी वाणी, मेरी निपुणता, मेरा बल और मेरी हर सांस यज्ञ भावना से युक्त हो–

प्राणश्र में अपानश्र मेडसुध।

वाक्च में दक्षश्च में बलं च में यज्ञेन कल्पन्ताम्।। (वा०स० 18.2)[4]

अर्थात–यज्ञ स्वास्थ्यवर्धक होता है। विश्लेषण करने पर पाया गया है। कि यज्ञों से निकला हुआ धुँआ से वायु को शुद्ध करने की क्षमता होती है, साथ ही यज्ञ के इस धुएँ में चेचक, हैजा, क्षय जैसी बीमारियों के कीटाणुओं को भी नष्ट करने की क्षमता पायी जाती है। यज्ञ के धूपन से वायु में फैली दुंर्गध नष्ट होत है एवं अन्य रोगवाहक कृमि कीट आदि भी नष्ट होकर पर्यावरण को शुद्ध व स्वास्थ्यवर्धक करता है। हम जब यज्ञाग्नि में अन्न, औषधि, घृत व अन्य सामग्री की आहुति देते है तब उनकी रोगनिवारक रक्त से सीधा संपर्क होता है। वह वायु अपने में समाहित रोग–निवारक परमाणुओं को रक्त में पहुँचा देती है। इससे हमारे रक्त में जो रोगकृमि होते है, वे मर जाते है। रक्त के अनेक दोष वायु में आ जाते है और इसी वायु को जब हम अपने श्वास द्वारा फेफड़ों में भरते है तो उस वायु के जो हमारे रक्त में कृमि होते है, वे मर जाते है। इस तरह यज्ञमय वायु में बार–बार श्वास लेने से शनैःशनैः रोगी भी स्वच्छ वायु पाकर स्वस्थ हो जाता है। इस पर यज्ञों के द्वारा पर्यावरण भी स्वास्थ्यवर्धक हो जाता है। (यज्ञमीमांसा अर्थात् अग्निहोत्र दर्पण पृ० 18 प्रथम संस्करण 1980, रामनाथ वेदालंकार)[5]

वायु से हमें जीवनदायिनी शक्ति प्राप्त होती है, इसलिए इसकी स्वच्छता पर्यावरण की अनुकूलता के लिए परम अपेक्षित है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में वायु की स्तुति की गई है, जिससे सभी जीवित प्राणियों का निरन्तर सम्यक विकास हो सके। वर्तमान में वायु प्रदूषण बहुत ही तीव्र गति से फैल रहा है, जो बहुत ही हानिकारक है। जिससे सम्पूर्ण विश्व वायु प्रदूषण की चपेट में है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में जल संरक्षण

प्राचीन भारतीय संस्कृति में जल संरक्षण के विषय में पर्याप्त चिन्तन किया गया है। प्राचीन ऋषि–मुनि कहते है कि **जल ही जीवन है।** वैदिक साहित्य में भी वर्णन है कि जल, वनस्पतियाँ एवं औषधियाँ मानव की रक्षक है। मानव के इन रक्षक पदार्थों में जल, औषधि, वन वृक्ष, पर्वत एवं धुलोक का उल्लेख मिलता है–

आप ओषधीरूत नोडवन्तु,

द्योर्वना गिरयो वृक्षकेशाः। (ऋग्वेद, 5.41.11)[6]

इस मंत्र में स्पष्टतः उल्लेख है कि इन पदार्थों को हानि पहुँचाना, अपने जीवन रक्षक पदार्थों को नष्ट करना है अर्थात् अपने ही जीवन को संकट में डालना है। जल सभी प्राणी जगत के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जल के बिना जीवन संभव ही नहीं है। भारतीय संस्कृति में नदियों को माता का स्तर प्रदान कर जल संरक्षण किया गया है। ऋग्वेद के नदी सूक्त में वर्णन है कि–

इयं मेम्, गंङ्गे, यमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोम सचता परूष्ण्या।

असिकन्या मरूद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जिकीये शृगुहता सुषोमया।। (ऋग्वेद, नदीसूक्त 10.5.75.)[7]

गंगा, यमुना, सरस्वती, सतलज, व्यास आदि नदियाँ वैदिक काल से ही जन–जन की आस्था का केन्द्र रही है। ये सभ्यता और संस्कृति की मूलाधार मानी जाती है। इसलिए इन नदियों के जल की पवित्रता व स्वच्छता को बनाये रखना बहुत आवश्यक है। छान्दोग्य उपनिषद् में भी कहा गया है, कि जल ही जीवन का मूल है, बिना जल के जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसी प्रकार श्रीमद्भगवत नदियों में श्रेष्ठ भागीरथी गंगा मैं ही हूँ। (महाभारत, अनुशासन पर्व, 26/82)[8] पौराणिक ऋषि–मुनि भी हमेशा जल की निर्मलता एवं शुचिता के लिए सचेत रहते थे। विष्णु पुराण में

जल का भगवान (विष्णु) का वास बताया गया है। जल से ही पर्वत समुद्रादि के सहित कमल के आकार वाली पृथ्वी उत्पन्न हुयी है–

'यदम्बु वैष्णव : कायस्ततो विप्र वसुन्धरा।

पद्माकारा समुद्रभूता पर्वताब्ध्यादिसंयुता।।

प्राचीन भारतीय साहित्य के साथ–साथ भारतीय कलाओं में भी जल संरक्षण के साक्ष्य मिलते है। हड़प्पा, मोहनजोदड़ों व धौलावीरा की खुदाई से प्राप्त कुआँ, तालाब, स्नानागारों को देखकर अनुमान लगाया जाता है कि इस काल में जल संरक्षण की उचित व्यवस्था थी। मोहनजोदड़ो के उत्खनन से मोटी दीवारों से निर्मित एक विशाल सुदृढ़ इमारत मिलती है जिसे **विशालस्नानागार** कहा गया है।

सिन्धु सभ्यता से प्राप्त साक्ष्य न केवल उस समय जल के धार्मिक महत्व को बताते है बल्कि ये पर्यावरण संरक्षण को भी प्रोत्साहित करते है। इसी प्रकार कालान्तर में सिक्को, मन्दिरों पर भी जल को देवी रूप प्रदान कर नदियों को उत्कीर्ण किया गया है। गुप्तकाल में मन्दिर निर्माण होने के कारण गंगा, यमुना का अंकन मंदिर के द्वारपालिका के रूप में मकरवाहिनी गंगा एवं कूर्मवाहिनी यमुना के रूप में किया गया है। (विमलमोहिनी श्रीवास्वत–प्राचीन भारतीय कला में मांगलिक प्रतीक पृ० 124)[9] इन नदियों को देवी का रूप प्रदान करना साथ ही उन्हें मंदिर के द्वार पर उत्कीर्ण करना ही न केवल उनके धार्मिक महत्व को दर्शाता बल्कि यह जल की पवित्रता व स्वच्छता को भी प्रोत्साहित करता है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में वनस्पति संरक्षण

वृक्ष एवं वनस्पति के प्रति श्रद्धा भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में सर्वत्र वृक्षों की महत्ता स्वीकार की गयी है तथा इनकी पूजा दीर्घकाल से ही की जाती रही है। भारतीय संस्कृति में वृक्ष–पूजा दो रूपों में पूजना अर्थात वृक्ष को किसी देवी–देवता से संबंद्ध कर पूजा। वृक्ष और वनस्पति प्रकृति के अविभाज्य अंग है, इसी कारण आदिकाल से ही मनुष्यों ने इसकी महत्ता को स्वीकार किया व प्रकृति की अन्य शक्तियों की तरह वृक्ष और वनस्पति को भी अपने जीवन की मूल आवश्यकताओं में स्थान दिया जिससे प्राणियों का पालन–पोषण होता है। प्रारम्भिक मानव पूरी तरह से वृक्ष और वनस्पति पर ही निर्भर था। हड़प्पा सभ्यता के उत्खनन से प्राप्त साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इस समय वृक्ष पूजा प्रचलित थी। हड़प्पा की कई मुद्राओं पर एक देवता को दो पीपल के अन्दर प्रदर्शित किया गया है। (शास्त्री, केदारनाथ, सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र हड़प्पा पृ० 84)[10]

वैदिक साहित्य में वृक्ष और वनस्पतियों की पूजा के संकेत मिलते है। ऋग्वेद का अरण्य सूक्त साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ वन संरक्षण के लिए भी प्रेरणादायी है। इसमें वनो के समूह को **अरण्यनि** नाम दिया गया है। इन वनो से बहुत–सी औषधियाँ एवं वन के सभी जीव–जन्तुओं को संरक्षण प्राप्त होता है। ऋग्वेद में अरण्य का वर्णन **वन देवी** के रूप मे बहुत ही अलंकारिक एवं आकर्षक रूप में किया गया है–

अरण्यान्यण्शनसौ या प्रेव नश्यसि।

कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दती।।[11]

वैदिक साहित्य में वृक्षो तथा वनस्पति के महत्व का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसमें वृक्ष अन्न, औषधि आदि सभी प्रकार की वनस्पतियों का उल्लेख किया गया है। वृक्ष मनुष्य व अन्य प्रजातियों को जीवित रखते है अतः उन्हें सभी का रक्षक कहा गया है। वृक्षों को प्रदूषण का नाशक भी बताया गया है औषधियाँ प्रदूषण को नष्ट करती है इसलिए इन्हें विषदूषण कहा गया है।[12]

उपनिषदों में भी वृक्ष और वनस्पति के महत्व का वर्णन किया गया है। वृहदारण्य कोपनिषद में भी कहा गया है कि वृक्षों में जीवन शक्ति है। वनो में व्याप्त महर्षियों के आश्रमों एवं गुरूकुलों में व भारतीय ज्ञान प्रणाली ने संसार की संपन्नता को विकसित किया है। वृक्षों की अपूर्व जीवनदायिनी शांति के कारण वृक्षों को नष्ट करना वैदिक धर्म मे पाप माना गया है क्योंकि वृक्ष बहुत बड़े परोपकारी होते है। वे पक्षियों का पोषण करते है, पर्वतो को थामकर रखते है, वर्षा कराते है एवं मनुष्य के जीवन को आन्नदमय एवं सुखकारी बनाकर पर्यावरण को निरोग, सुखद, शीतल बनाते है। वनो का विकास ही हमारा विकास है ये नेत्रो को स्फूर्ति एवं चेतना प्रदान करते है।

पुराणों में वृक्ष और वनस्पतियों को देवताओं से सम्बद्ध कर उसकी महत्ता का विस्तृत विवरण मिलता है। पौराणिक साहित्य में आँवला को शिव तथा विष्णु का प्रिय कहा गया है तथा विल्ब एवं तुलसी के समान पवित्र भी माना गया है। कार्तिक मास की एकादशी को इस वृक्ष के पूजन का विधान है। पुराण इसे सर्वदेवमयी वृक्ष के रूप में स्वीकार करते है और इसके मूल में विष्णु उसके ऊपर ब्रह्मा, स्कन्ध में रूद्र, शाखाओं में मुनि, टहनियों में देवता, पत्ते में वायु, पुष्पों में मरूतगण तथा फलों में समस्त प्रजापति वास करते है।[13]

दशकूपसमा वापी, दशवापीसमोहद्रः।

दशह्रदसमो पुत्रो, दशपुत्रसमो द्रुमः।।

अर्थात एक जलकुण्ड दस कुओं के समान है, एक तालाब दस जलकुण्डों के समान है, दस तालाब एक पुत्र के समान है, और दस पुत्रों के समान एक वृक्ष है। दस पुत्रों के बराबर ही एक वृक्ष को समझना वृक्ष के महत्व को दर्शाता है। वृक्षो में देवत्व को प्रतिपादित करते हुए श्री कृष्ण ने स्वयं को स्थावर हिमालयः अर्थात् स्थिर रहने वालो मे हिमालय और वृक्षों में स्वयं को पीपल का वृक्ष कहा है। योगेश्वर श्री कृष्ण के इस कथन से भारतीय संस्कृति में वृक्षों का महत्व स्पष्ट होता है –

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।

गन्धर्वाणां चिहारभः सिद्धानां कपिलो मुनिः।। (श्रीमद्भागवत गीता, विभूतियोग 10/31[14]

प्राचीन भारतीय संस्कृति में वृक्ष, वनस्पतियों को मानव एक रक्षक, पोषक और माता–पिता के दर्जे से विभूषित किया गया है। हमारे ऋषियों ने हमारे राष्ट्र की सांस्कृतिक, सौन्दर्यपूरक एवं आर्थिक जीवन–धारा में वृक्ष–वनस्पतियों के महत्व को दर्शाया गया है। भारतीय संस्कृति का अधिक से अधिक वृक्ष लगाना एक नारा ही नहीं या अपितु भारतीय धर्म द्वारा अनुमति प्राप्त जीवन की अति उत्तम पद्धति थी। जिसकी आवश्यकता आज वर्तमान में बहुत प्रांसगिक है, क्योंकि इस समय पर्यावरण असंतुलन का महत्वपूर्ण कारण ही वनो का अविवेकपूर्ण कटान ही है जिसकी वजह से आज सभी के जीवन पर खतरा मंडरा रहा है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में प्रकृति का संतुलन बनाये रखने के लिए बार–बार आह्वान मिलता है कि मनुष्य अपनी इच्छाओं को वश में रखकर प्राकृतिक संसाधनों से उतना ही ग्रहण करें जो उसकी पूर्णता को क्षति न पहुँचाये।

जैन एवं बौद्ध साहित्य में भी व यात्राओं एवं वृक्ष महोत्सवों का सुंदर एवं मनोहर विवरण प्रस्तुत है जो वन वृक्षों एवं पशु–पक्षियों के संरक्षण की उदात भावना से ही प्रेरित है। गौतम बुद्ध को भी वृक्ष के नीचे से ही ज्ञान प्राप्त हुआ या तभी से उसे 'बोधिवृक्ष' कहा गया है।

भारत में वृक्ष पूजा की परंपरा भारतीय कलाओं से भी प्राप्त होती है। सिन्धु सभ्यता से प्राप्त सप्तमुद्राओं पर वृक्ष पूजा के दृश्य चित्रित है। मौर्यकाल के श्रीचक्रो पर भी सघन वृक्षों से घिरी श्रीलक्ष्मी को चित्रित किया गया है। विदिशा से प्राप्त एक शिल्प पर कल्पवृक्ष का मनोहर दृश्य अंकित है, जो कोलकत्ता के इंडियन म्यूजियम है। वेदिका से मंडित इस वृक्ष को 'श्रीवृक्ष' कहकर सम्बोधित किया गया है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में प्रकृति पूजा

प्रकृति से हमें समस्त संसाधन प्राप्त हुये है, प्रकृति से ही हमें ऑक्सीजन मिलती है ताकि हम सांस ले। प्रकृति से ही हमें खाद्यान्न, जल व अन्य सभी जरूरत की वस्तुयें प्राप्त होती है। प्राचीन भारतीय विद्वानों को इन सब चीजों की जानकारी थी इसलिए प्राचीन ऋषि–मुनियों ने सोचा कि जब प्रकृति हमें हमारी सारी जरूरत की चीजें उपलब्ध कराती है तो इनका संरक्षण भी बहुत आवश्यक है। प्रकृति (पारिस्थितिकी) का संरक्षण हो इसलिए प्रकृति की पूजा पर बल दिया। जिसका तात्पर्य है– पर्यावरण संतुलन को बनाये रखना। भारतीय संस्कृति के देवी देवता ही प्राकृतिक शक्तियों के मूर्त रूप मे जैसे– इन्द्र, अग्नि, वरूण, उषा, अदिति, आरण्यनी इत्यादि। विश्व की मूल शक्तियाँ जिस प्रकार प्रकृति के विविध रूपों में अभिव्यक्त होती है उसी को दृष्टि में रखकर प्राचीन विद्वानों ने अनेक देवी–देवताओं की कल्पना की। प्राचीन ऋषियों का मानना था कि वर्षा, धूप, सर्दी, गर्मी सब एक नियम से होते है। पृथ्वी अपने नियम से कार्य करती है, इन नियमों के अनुसार पृथ्वी मनुष्यों तथा सभी जीव–जन्तुओं को धारण करती है अर्थात् परिस्थितिकी संतुलन एक

नियम के तहत होता है जिससे प्रकृति में संतुलन बना रहता है। इन नियमों को बनाने वाले देवी–देवता हमारे लिए पूजनीय है अर्थात् प्रकृति हमारे लिए पूजनीय है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रमुख देवता इन्द्र थे। इन्द्र न सिर्फ विजय प्रदान कराते थे बल्कि वे वर्षा के भी देवता थे। वर्षा परिस्थितिकी संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। वर्षा से नदियों को जल प्राप्त होता है तथा जीव–जन्तुओं को खाद्यान्न मिलता है। वर्षा के महत्व को समझकर ही वैदिक ऋषियों ने पारिस्थितिकी महत्व को समझा। इस प्रकार उन्होंने अपने सर्वप्रमुख भगवान को वर्षा से जोड़कर उन्होंने प्रकृति के पारिस्थितिकी तंत्र मे एक संतुलन स्थापित किया।

एमेनं सृजाता सुते मंदिम–इन्द्राय मांदिने।

चक्री विश्वानि चक्रये।। (ऋग्वेद – 01.09.02)[15]

ऋग्वेद के उक्त मंत्र में इन्द्र को ऐसे कर्म करने वाला कहा गया है, जो सम्पूर्ण जगत को समाहित करता है। सम्पूर्ण जगत (विश्व) को समाहित करने वाले कर्म का अर्थ है कि कर्म सामूहिक भलाई के लिए किये जाते है। इन्द्र को वर्षा के देवता के रूप में स्वीकार किया जाना ही वर्षा प्रकृति की एक मूल विशेषता एवं प्राणी जगत की प्रकृति की अनुपम देन है अगर वर्षा होगी तो सभी के लिए वर्षा होगी। यह प्राकृतिक सामूहिक भलाई के लिए कार्य करती है।

प्राचीन काल के दूसरे प्रमुख देवता अग्नि थे। अग्नि का आविष्कार मानवीय सभ्यता के विकास में एक प्रमुख क्रान्तिकारी एवं युग प्रर्वतक घटना है। प्रकृति के संतुलन को बनाये रखने में अग्नि का भी महत्वपूर्ण स्थान है। अग्नि का इस्तेमाल अगर संतुलित रूप में किया जाये तो पारिस्थितिकी संतुलन अगर असंतुलित रूप में किया जाये तो पारिस्थितिकी असंतुलन। भारतीय मनीषयों ने इस बात की समझ विकसित की तथा अग्नि के महत्व को समझा एवं भगवान के रूप में इसकी पूजा की। हम सभी के दैनिक जीवन में प्रातः काल से लेकर रात्रि तक हमें अग्नि की आवश्यकता पड़ती है। अग्नि का ऋग्वेद में वर्णन मिलता है–

तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वत्सुप्रचित क्षमवसे कुतश्रित।

दक्षायो यो दय आस नित्य :।। (ऋग्वेद 03.07.1–2)[16]

अर्थात – घर में प्रज्वलित किये जाने योग्य नित्य दर्शनीय ज्वालायुक्त जो अग्निदेव हैं उन्हे याजको ने अपने रक्षण हेतु यज्ञ स्थल में स्थापित किया है। अग्निदेव से ही प्रत्येक घर में रोशनी होती है तथा जिस महान अंधकार को दूर करने हेतु कोई उपाय नहीं होता है, उस अंधकार को दूर करने के लिए ईश्वर की तरह चमकने वाले महान सत्य की तरह अग्निदेव की कृपा से छुटकारा पाया जा सकता है। अग्नि का महत्व न केवल हर घर के लिए महत्वपूर्ण है बल्कि इसका महत्व तो समस्त प्राणियों के लिए समान रूप से सभी के कल्याण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अग्नि का प्रयोग यज्ञ अनुष्ठानों में भी किया जाता या व यज्ञों के रूप में प्रयोग की जाने वाली साम्रगी के धुएँ से पर्यावरण स्वच्छ होता था। आज ये बाते वैज्ञानिक अनुसंधानो से भी सिद्ध की जा रही है। इन बातों से लगभग 3500 साल पहले ऋषि–मुनि परिचित थे तथा अग्नि के महत्व को समझते थे।

भारतीय संस्कृति के एक ओर महत्वपूर्ण देवता वरूण थे। वरूण को 'ऋतस्य गोप' कहा गया है अर्थात् 'ऋतुओं का संरक्षक'। प्राकृतिक परिस्थितिकी के लिए ऋतुओं का संरक्षण आवश्यक या व अन्य देवताओं की तरह वरूण को भी पारिस्थितिकी तंत्र से जोड़ा। वरूण को जल का स्वामी भी माना जाता है–

मित्र हुवे पूतदक्षं वरूणं च रिशादसम्।

धियं धृताचीं साधन्ताम्।। (ऋग्वेद–10.02.07)

अर्थात –मित्र और वरूण के योग से जल की उत्पत्ति संकेतित है। बौद्धिक साहित्य में वरूण को समुद्र का देवता, विश्व का नियामक और शासक, ऋतु–परिवर्तन, दिन–रात का कर्ता–धर्ता, सत्य का प्रतीक, आकाश, पृथ्वी और सूर्य के निर्माता के रूप में माना जाता है।

भारतीय संस्कृति में जीवनदायिनी प्रकृति के लिए अदिति को प्रचुर महत्व दिया गया है। अदिति से उत्पन्न होने के कारण देवों के रूप में प्रतिष्ठित सूर्य, मरूत आदि बारह प्राकृतिक, शक्तियों का एक पर्याय अदिति भी है। (गोपथ ब्राह्मण–1/2/15 अदिति अर्थात सूर्य का हमें आधुनिक बैज्ञानिक अध्ययनों से सूर्य के महत्व का हमें पता चलता है। सौरमंडल में ऊर्जा के एक स्रोत के रूप में सूर्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। पृथ्वी पर प्रत्येक कार्य करने के लिए सूर्य की ऊर्जा की जरूरत होती है। इस बात की समझ प्राचीन ऋषि–मुनियों को भी उन्होंने सूर्य पूजा के रूप में न सिर्फ सूर्य पूजा की बल्कि प्राकृतिक संतुलन को भी कायम किया।

निष्कर्ष :– इस सौरमण्डल में मनुष्य एकमात्र जीव है जिसे सोचने की शक्ति प्रदान की गयी है। मनुष्य ने इस शक्ति का उपयोग करके अपना विकास किया। मनुष्य की विकास प्रक्रिया आज इस सौरमण्डल के एकमात्र निवास योग्य स्थल पृथ्वी से सौरमण्डल के अन्य ग्रहों तक पहुँचने लगी है। मनुष्य आज सौरमण्डल के दूसरे निवास योग्य स्थ को ढूढ़ने की कोशिश कर रहा है इतना ही नहीं वह सौरमण्डल से बाहर भी देखने का प्रयास कर रहा है।

प्रकृति के कुछ तत्व मानव ने बहुत आसानी से समझ लिये परन्तु कुछ तत्वों को वह समझ नही पाया जैसे–पेड़ हवा, मिट्टी, सूर्य, चन्द्रमा, अंधकार, प्रकाश इत्यादि। जिन तत्वों को मनुष्य समझ नहीं पाया उसका उसने दैवीयकरण कर दिया तथा उनकी पूजा प्रारम्भ कर दी। मनुष्य ने यह समझ विकसित की कि प्रकृति ही हमें जरूरत की सारी चीजें प्रदान करती है अतः वह हमारे लिए देवतुल्य है। समय के साथ विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले आविष्कारो को तथा विभिन्न सामाजिक आयामों ने प्रकृति के दैवीयकरण के तत्वों को कमजोर कर दिया। मनुष्य यह समझने लगा कि प्रकृति का अत्यधिक प्रयोग अपने विकास के लिए लिया जाना चाहिए। प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक इस्तेमाल ने परिस्थितिकीय असंतुलन को जन्म दिया तथा इससे मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ गया। प्रकृति का दैवीयकरण कर उनकी पूजा हो या न हो प्रकृति का संरक्षण आवश्यक है ताकि मानव का अस्तित्व बना रहे।

भारतीय संस्कृति में आज भी प्रकृति के दैवीयकरण के तत्व देखने को मिलते है। वृक्ष पूजा, पशु, पूजा, सूर्य पूजा, नदी को माता मानकर पूजना, धरती को देवी मानना, हवा को वायुदेव के रूप में पूजना इत्यादि आज भी भारतीय संस्कृति की विशेषता है। प्राचीनकाल में विकसित यह विश्वास आज भी भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग बना हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. ऋग्वेद– 6/37/3
2. अथर्ववेद– 4/25/03
3. तैत्तिरीयोपनिषद– 3/3
4. वा०सं० 18.2
5. यज्ञमीमांसा अर्थात् अग्निहोत्र दर्पण पृ०–18 प्रथम संस्करण, 1980, रामनाथ वेदालंकार
6. ऋग्वेद–05/41/11
7. ऋग्वेद, नदीसूक्त 10/05/75
8. महाभारत, अनुशासन पर्व, 26/82
9. विमलमोहिनी, श्रीवास्तव–प्राचीन भारत में मांगलिक प्रतीक, पृ०–124
10. शास्त्री, केदारनाथ, सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र हड़प्पा पृ० 184
11. ऋग्वेद, 10/46/01
12. उमा या विदूषणी.....औषधीः। अथर्ववेद 08/07/10
13. पद्म पुराण, 47/20/23
14. श्रीमद्भागवत गीता, विभूतियोग 10/31
15. ऋग्वेद 10/09/02
16. ऋग्वेद 03/07/02
17. ऋग्वेद 10/02/07
18. गोपथ ब्राह्मण– 01/02/15